हिन्दू धर्म एवं संस्कारों का महत्व

हिन्दू धर्म (संस्कृत: सनातन धर्म) एक धर्म (या, जीवन पद्धति) है जिसके अनुयायी अधिकांशतः भारत और नेपाल में हैं। इसे विश्व का प्राचीनतम धर्म कहा जाता है। इसे 'वैदिक सनातन वर्णाश्रम धर्म' भी कहते हैं जिसका अर्थ है कि इसकी उत्पत्ति मानव की उत्पत्ति से भी पहले से है। विद्वान लोग हिन्दू धर्म को भारत की विभिन्न संस्कृतियों एवं परम्पराओं का सम्मिश्रण मानते हैं जिसका कोई संस्थापक नहीं है।

यह वेदों पर आधारित धर्म है, जो अपने अन्दर कई अलग-अलग उपासना पद्धतियाँ, मत, सम्प्रदाय और दर्शन समेटे हुए है। अनुयायियों की संख्या के आधार पर ये विश्व का तीसरा सबसे बड़ा धर्म है। संख्या के आधार पर इसके अधिकतर उपासक भारत में हैं और प्रतिशत के आधार पर नेपाल में हैं। हालाँकि इसमें कई देवी-देवताओं की पूजा की जाती है, लेकिन वास्तव में यह एकेश्वरवादी धर्म है।

इसे सनातन धर्म अथवा वैदिक धर्म भी कहते हैं। इण्डोनेशिया में इस धर्म का औपचारिक नाम "हिन्दु आगम" है। हिन्दू केवल एक धर्म या सम्प्रदाय ही नही है अपितु जीवन जीने की एक पद्धति है।

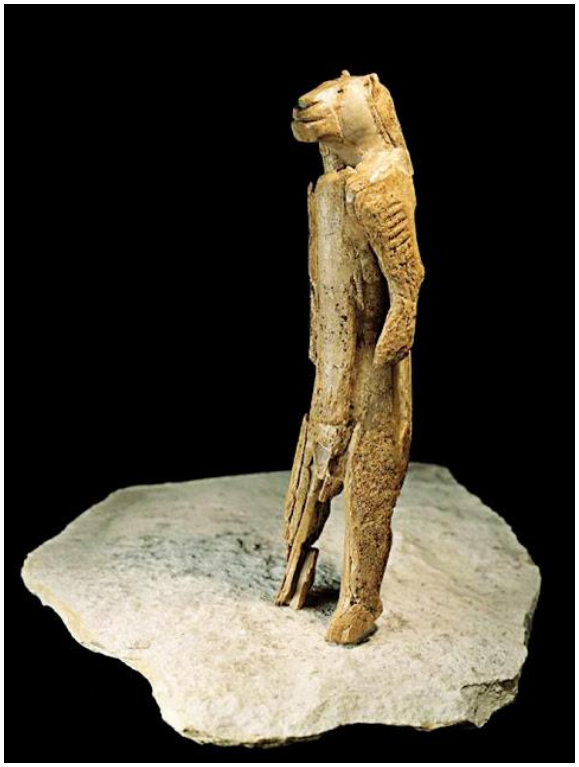

हिन्दू धर्म पृथ्वी के सबसे प्राचीन धर्मों में से एक है; हालाँकि इसके इतिहास के बारे में अनेक विद्वानों के अनेक मत हैं। हिंदू ज्योतिष शास्त्र में विद्यमान काल गणना के अनुसार सृष्टि के आरंभ की तिथि कई करोड़ वर्ष पहले की वर्णित है; संदर्भ हेतु - बहुप्रचलित ग्रेगरी कैलेण्डर के सन् २०१५ मे मार्च माह में प्रारंभ हुआ हिंदू नव वर्ष सृष्टि प्रारंभ से १,९५,५८,८ ५,११६ वाँ वर्ष था। वेदांग ज्योतिषानुसार इस आधार पर हिंदू धर्मावलंबी इस धर्म को उतना ही पुराना मानते हैं। वहीं आधुनिक इतिहासकार हड़प्पा, मेहरगढ़ आदि पुरातात्विक अन्वेषणों के आधार पर इस धर्म का इतिहास मात्र कुछ हज़ार वर्ष पुराना मानते हैं। इन्हें खारिज करने हेतु कई चमत्कारी, सटीक साक्ष्य भी उपलब्ध

हैं जो इस धर्म को प्राचीनतम धर्म साबित करते हैं उदाहरणार्थ जर्मनी में १९३९ में मिली नृसिंह की मूर्ति। कार्बन डेटिंग प्रक्रिया से उसकी आयु ४०००० वर्ष ज्ञात हुई।

जहाँ भारत (और आधुनिक पाकिस्तानी क्षेत्र) की सिन्धु घाटी सभ्यता में हिन्दू धर्म के कई चिह्न मिलते हैं। इनमें एक अज्ञात मातृदेवी की मूर्तियाँ, शिव पशुपति जैसे देवता की मुद्राएँ, लिंग, पीपल की पूजा, इत्यादि प्रमुख हैं। इतिहासकारों के एक दृष्टिकोण के अनुसार इस सभ्यता के अन्त के दौरान मध्य एशिया से एक अन्य जाति का आगमन हुआ, जो स्वयं को आर्य कहते थे और संस्कृत नाम की एक हिन्द यूरोपीय भाषा बोलते थे। एक अन्य दृष्टिकोण के अनुसार सिन्धु घाटी सभ्यता के लोग स्वयं ही आर्य थे और उनका मूलस्थान भारत ही था।

आर्यों की सभ्यता को वैदिक सभ्यता कहते हैं। पहले दृष्टिकोण के अनुसार लगभग १७०० ईसा पूर्व में आर्य अफ़ग़ानिस्तान, कश्मीर, पंजाब और हरियाणा में बस गए। तभी से वो लोग (उनके विद्वान ऋषि) अपने देवताओं को प्रसन्न करने के लिए वैदिक संस्कृत में मन्त्र रचने लगे। पहले चार वेद रचे गए, जिनमें ऋग्वेद प्रथम था। उसके बाद उपनिषद जैसे ग्रन्थ आए। हिन्दू मान्यता के अनुसार वेद, उपनिषद आदि ग्रन्थ अनादि, नित्य हैं, ईश्वर की कृपा से अलग-अलग मन्त्रद्रष्टा ऋषियों को अलग-अलग ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त हुआ जिन्होंने फिर उन्हें लिपिबद्ध किया। बौद्ध और धर्मों के अलग हो जाने के बाद वैदिक धर्म मे काफ़ी परिवर्तन आया। नये देवता और नये दर्शन उभरे। इस तरह आधुनिक हिन्दू धर्म का जन्म हुआ।

दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार हिन्दू धर्म का मूल कदाचित सिन्धु-सरस्वती परम्परा (जिसका स्रोत मेहरगढ़ की ६५०० ई.पू. संस्कृति में मिलता है) से भी पहले की भारतीय परम्परा में है।

हिन्दू धर्म में कोई एक अकेले सिद्धान्तों का समूह नहीं है जिसे सभी हिन्दुओं को मानना ज़रूरी है। ये तो धर्म से ज़्यादा एक जीवन का मार्ग है। हिन्दुओं का कोई केन्द्रीय चर्च या धर्मसंगठन नहीं है और न ही कोई "पोप"। इसके अन्तर्गत कई मत और सम्प्रदाय आते हैं और सभी को बराबर श्रद्धा दी जाती है। धर्मग्रन्थ भी कई हैं। फ़िर भी, वो मुख्य सिद्धान्त, जो ज़्यादातर हिन्दू मानते हैं, इन सब में विश्वास: धर्म (वैश्विक क़ानून), कर्म (और उसके फल), पुनर्जन्म का सांसारिक चक्र, मोक्ष (सांसारिक बन्धनों से मुक्ति--जिसके कई रास्ते हो सकते हैं) और बेशक, ईश्वर। हिन्दू धर्म स्वर्ग और नरक को अस्थायी मानता है। हिन्दू धर्म

के अनुसार संसार के सभी प्राणियों में आत्मा होती है। मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो इस लोक में पाप और पुण्य, दोनो कर्म भोग सकता है और मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

हिन्दू धर्म में चार मुख्य सम्प्रदाय हैं : वैष्णव (जो विष्णु को परमेश्वर मानते हैं), शैव (जो शिव को परमेश्वर मानते हैं), शाक्त (जो देवी को परमशक्ति मानते हैं) और स्मार्त (जो परमेश्वर के विभिन्न रूपों को एक ही समान मानते हैं)। लेकिन ज्यादातर हिन्दू स्वयं को किसी भी सम्प्रदाय में वर्गीकृत नहीं करते हैं। प्राचीनकाल और मध्यकाल में शैव, शाक्त और वैष्णव आपस में लड़ते रहते थे। जिन्हें मध्यकाल के संतों ने समन्वित करने की सफल कोशिश की और सभी संप्रदायों को परस्पर आश्रित बताया।

क्या है सोलह संस्कार और क्यों आवश्यक है सब के लिए?

संस्कार का सामान्य अर्थ है-किसी को संस्कृत करना या शुद्ध करके उपयुक्त बनाना। किसी साधारण या विकृत वस्तु को विशेष क्रियाओं द्वारा उत्तम ना देना ही उसका संस्कार है। इसी तरह किसी साधारण मनुष्य को विशेष प्रकार की धार्मिक क्रिया-प्रक्रियाओं द्वारा श्रेष्ठ बनाना ही सुसंस्कृत करना कहा जाता है।

संस्कार के पालन से मिलती है आयु-आरोग्यता। । भारतीय संस्कृति में सोलह संस्कार बताए गए हैं। इन संस्कारों के अनुसार जीवन-यापन करने से मनुष्य जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इसमें उपनयन संस्कार की विशेष महत्ता है। इस संस्कार के साथ ही बालक ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करता है। ब्रह्मचर्य के नियम कायदों का पालन करने से आयु-आरोग्यता और जीवन में सफलता मिलती है। आज अभिभावकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे उपनयन संस्कार के नियमों का पालन करें।

संस्कृत भाषा का शब्द है संस्कार। मन, वचन, कर्म और शरीर को पवित्र करना ही संस्कार है। हमारी सारी प्रवृतियों और चित्तवृत्तियों का संप्रेरक हमारे मन में पलने वाला संस्कार होता है। संस्कार से ही हमारा सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन पुष्ट होता है और हम सभ्य कहलाते हैं। व्यक्तित्व निर्माण में हिन्दू संस्कारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संस्कार

विरुद्ध आचरण असभ्यता की निशानी है। संस्कार मनुष्य को पाप और अज्ञान से दूर रखकर आचार-विचार और ज्ञान-विज्ञान से संयुक्त करते हैं। मुख्यत: तीन भागों में विभाजित संस्कारों को क्रमबद्ध सोलह संस्कार में विभाजित किया जा सकता है। ये तीन प्रकार होते हैं- (1) मलापनयन, (2) अतिशयाधान और (3) न्यूनांगपूरक।

(1) मलापनयन -उदाहरणार्थ किसी दर्पण आदि पर पड़ी हुए धूल, मल या गंदगी को पोंछना, हटाना या स्वच्छ करना मलापनयन कहलाता है।

(2) अतिशयाधान- किसी रंग या पदार्थ द्वारा उसी दर्पण को विशेष रूप से प्रकाशमय बनाना या चमकाना 'अतिशयाधानÓ कहलाता है। दूसरे शब्दों में इसे भावना, प्रतियत्न या गुणाधान-संस्कार भी कहा जाता है।

(3) न्यूनांगपूरक- अनाज के भोज्य पदार्थ बन जाने पर दाल, शाक, घृत आदि वस्तुएँ अलग से लाकर मिलाई जाती हैं। उसके हीन अंगों की पूर्ति की जाती हैं, जिससे वह अनाज रुचिकर और पौष्टिक बन सके। इस तृतीय संस्कार को न्यूनांगपूरक संस्कार कहते हैं।

अत: गर्भस्थ शिशु से लेकर मृत्युपर्यंत जीव के मलों का शोधन, सफाई आदि कार्य विशिष्ट विधिक क्रियाओं व मंत्रों से करने को संस्कार कहा जाता है। हिंदू धर्म में सोलह संस्कारों का बहुत महत्व है। वेद, स्मृति और पुराणों में अनेकों संस्कार बताए गए है किंतु धर्मज्ञों के अनुसार उनमें से मुख्य सोलह संस्कारों में ही सारे संस्कार सिमट जाते हैं अत: इन संस्कारों के नाम है-

(1)गर्भाधान संस्कार, (2)पुंसवन संस्कार, (3)सीमन्तोन्नयन संस्कार, (4)जातकर्म संस्कार, (5)नामकरण संस्कार, (6)निष्क्रमण संस्कार, (7)अन्नप्राशन संस्कार, (8)मुंडन संस्कार, (9)कर्णवेधन संस्कार, (10)विद्यारंभ संस्कार, (11)उपनयन संस्कार, (12)वेदारंभ संस्कार, (13)केशांत संस्कार, (14)सम्वर्तन संस्कार, (15)विवाह संस्कार और (16)अन्त्येष्टि संस्कार।

1.गर्भाधान संस्कार
2. पुंसवन संस्कार
3. सीमन्तोन्नयन संस्कार
4. जातकर्म संस्कार
5. नामकरण संस्कार
6. निष्क्रमण संस्कार
7. अन्नप्राशन संस्कार
8. चूडाकर्म या मुंडन संस्कार
9. कर्णभेद या कर्णवेध संस्कार
10. उपनयन संस्कार
11. वेदाररंभ या विद्यारंभ संस्कार
12. समवर्तन संस्कार
13. विवाह संस्कार
14. वानप्रस्थ संस्कार
15. सन्यास संस्कार
16. अंत्येष्टि संस्कार

संस्कार का अभिप्राय उन धार्मिक कृत्यों हैं जो किसी व्यक्ति को अपने समुदाय का योग्य सदस्य बनाकर उसके शरीर, मन और मस्तिष्क को पवित्र करें। संस्कार ही मनुष्य को सभ्यता का हिस्सा बनाए रखते हैं। लेकिन वर्तमान में हिंदुजन उक्त सोलह संस्कार मनमाने तरीके से करके मत भिन्नता का परिचय देते हैं, जो कि वेद विरुद्ध है।

वेदों के अलावा गृहसूत्रों में संस्कारों का उल्लेख मिलता है। स्मृति और पुराणों में इसके बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है। वेदज्ञों अनुसार गर्भस्थ शिशु से लेकर मृत्युपर्यंत जीव के मलों का शोधन, सफाई आदि कार्य को विशिष्ट विधि व मंत्रों से करने को संस्कार कहा जाता है। यह इसलिए आवश्यक है कि व्यक्ति जब शरीर त्याग करे तो सद्गति को प्राप्त हो।

कर्म के संस्कार- हिंदू दर्शन के अनुसार, मृत्यु के बाद मात्र यह भौतिक शरीर या देह ही नष्ट होती है, जबकि सूक्ष्म शरीर जन्म-जन्मांतरों तक आत्मा के साथ संयुक्त रहता है। यह सूक्ष्म शरीर ही जन्म-जन्मांतरों के शुभ-अशुभ संस्कारों का वाहक होता है। ये संस्कार मनुष्य के पूर्वजन्मों से ही नहीं आते, अपितु माता-पिता के संस्कार भी रज और वीर्य के माध्यम से उसमें (सूक्ष्म शरीर में) प्रविष्ट होते हैं, जिससे मनुष्य का व्यक्तित्व इन दोनों से ही प्रभावित होता है। बालक के गर्भधारण की परिस्थितियां भी इन पर प्रभाव डालती हैं।

ये संस्कार ही प्रत्येक जन्म में संगृहीत (एकत्र) होते चले जाते हैं, जिससे कर्मों (अच्छे-बुरे दोनों) का एक विशाल भंडार बनता जाता है। इसे संचित कर्म कहते हैं। इन संचित कर्मों का कुछ भाग एक जीवन में भोगने के लिए उपस्थित रहता है और यही जीवन प्रेरणा का कार्य

करता है। अच्छे-बुरे संस्कार होने के कारण मनुष्य अपने जीवन में प्रेरणा का कार्य करता है। अच्छे-बुरे संस्कार होने के कारण मनुष्य अपने जीवन में अच्छे-बुरे कर्म करता है। फिर इन कर्मों से अच्छे-बुरे नए संस्कार बनते रहते हैं तथा इन संस्कारों की एक अंतहीन श्रृंखला बनती चली जाती है, जिससे मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

उक्त संस्कारों के अलावा भी अनेकों संस्कार है जो हमारी दिनचर्या और जीवन के महत्वपूर्ण घटनाक्रमों से जुड़े हुए हैं, जिन्हें जानना प्रत्येक हिंदू का कर्तव्य माना गया है और जिससे जीवन के रोग और शोक मिट जाते हैं तथा शांति और समृद्धि का रास्ता खुलता है। यह संस्कार ऐसे हैं जिसको निभाने से हम परम्परागत व्यक्ति नहीं कहलाते बल्कि यह हमारे जीवन को सुंदर बनाते हैं।

दशहरा के मौके पर भारतीय समाज ने पुरातन काल से शस्त्र पूजन किया है। शस्त्र विद्या से क्षत्रियों का सदियों पुराना नाता है। देवताओं में भी शस्त्र रखने की परंपरा रही है। शस्त्र रक्षित समाज में ही ज्ञान, विज्ञान की प्रगति संभव है। वेदों में भी कहा गया है कि शास्त्र की रक्षा के लिए शस्त्र होना चाहिए।

शस्त्रों से रक्षित समाज में ही ज्ञान, विज्ञान की प्रगति हो सकती है। शस्त्र रखने की परम्परा मनुष्यों में ही नहीं बल्कि देवताओं में भी विद्यमान थी। शंकर जी का त्रिशूल, विष्णु जी का सुदर्शन चक्र, इन्द्रदेव का बज्र या मां काली का खड्ग इसके प्रतीक हैं। प्राचीन आर्यावर्त के आर्यपुरुष अस्त्र-शस्त्र विद्या में निपुण थे। उन्होंने अध्यात्म-ज्ञान के साथ-साथ आततियों और दुष्टों के दमन के लिये सभी अस्त्र-शस्त्रों की भी सृष्टि की थी। आर्यों की यह शक्ति धर्म-स्थापना में सहायक होती थी।

धनुष-बाण का उपयोग सबसे पहले भारतीयों ने ही किया था। भारत में ईसा से 1500 वर्ष पूर्व तक तलवारों का प्रचलन हो चुका था। अतीत से वर्तमान तक शस्त्र रखने की एक समृद्ध परंपरा क्षत्रिय समाज में चली आ रही है। वर्तमान परिस्थितियों में शस्त्रों के साथ शास्त्रों का अध्ययन भी आवश्यक

है क्योंकि पढ़ने-लिखने से ही किसी समाज का तीव्र गति से विकास होता है। कहा कि शस्त्रों से रक्षित समाज में ही शास्त्रों का चिंतन होता है।

प्राचीन काल में जिन अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग होता था, उनका वर्णन इस प्रकार है-

अस्त्र उसे कहते हैं, जिसे मन्त्रों के द्वारा दूरी से फेंकते हैं। वे अग्नि, गैस और विद्युत तथा यान्त्रिक उपायों से चलते हैं।

शस्त्र ख़तरनाक हथियार हैं, जिनके प्रहार से चोट पहुँचती है और मृत्यु होती है। ये हथियार अधिक उपयोग किये जाते हैं।

वैदिक काल में अस्त्रशस्त्रों का वर्गीकरण इस प्रकार था :

(1) अमुक्ता - वे शस्त्र जो फेंके नहीं जाते थे।

(2) मुक्ता - वे शस्त्र जो फेंके जाते थे। इनके भी दो प्रकार थे-

पाणिमुक्ता, अर्थात् हाथ से फेंके जानेवाले और

यंत्रमुक्ता, अर्थात् यंत्र द्वारा फेंके जानेवाले।

(3) मुक्तामुक्त - वह शस्त्र जो फेंककर या बिना फेंके दोनों प्रकार से प्रयोग किए जाते थे।

(4) मुक्तसंनिवृत्ती - वे शस्त्र जो फेंककर लौटाए जा सकते थे।